गंगालहरी

पद्माकर

श्रीरामरत्न-पुस्तक-माला—द्वितीय पुष्प

पद्माकर कृत

गंगालहरी

संपादक

विश्वनाथप्रसाद मिश्र बी० ए०

साहित्यरत्न

भारतेंदु अर्द्धशताब्दी

प्रकाशक

श्रीरामरत्न-पुस्तक-भवन, काशी

प्रथमावृत्ति

१९९१

मूल्य ~)॥

मुद्रक

बजरंगबली 'विशारद'

श्रीसीताराम प्रेस, जालिपादेवी, काशी

प्रस्तावना

संस्कृत में जिस प्रकार पंडितराज जगन्नाथ की 'गंगालहरी' प्रसिद्ध हुई ठीक उसी प्रकार हिंदी में कविवर पद्माकर की 'गंगालहरी'। यदि जनश्रुति को ठीक मानें तो एक प्रकार से दोनों की रचना के हेतु भी एक-से ही हैं। जिस प्रकार पहली 'गंगालहरी' के अनुकरण पर संस्कृत में अन्य रचनाएँ हुईं उसी प्रकार दूसरी 'गंगालहरी' की जोड़-तोड़ में भी 'जमुना-लहरी' (ग्वाल), 'सरजू-लहरी' (लछिराम) आदि रची गईं। जिस प्रकार पंडितराज की रचना की बराबरी

कोई नहीं कर सका ठीक उसी प्रकार 'पद्माकर' की रचना को भी कोई नहीं पहुँचा।

कवि ने इस छोटी-सी रचना में वचन-भंगि का आधार अधिक लिया है, जिसे आलंकारिक 'व्याजस्तुति' आदि नाम देते हैं। यद्यपि इन थोड़े-से छंदों में एक ही भाव बहुत थोड़े हेर-फेर से कई रूपों में मिलेगा, पर इसमें संदेह नहीं कि प्रत्येक छंद में कुछ-न-कुछ कहा अवश्य गया है, केवल चार पदों का ढाँचामात्र नहीं खड़ा किया गया है। इसमें भाषा की सफाई के अतिरिक्त उक्ति-निर्वाह भी पाया जाता है।

× × × ×

'पद्माकर' की 'गंगालहरी' के कवित्त यद्यपि जनता बड़े चाव से पढ़ती और सुनती है, पर वेंकटेश्वर प्रेसवाले पुराने ढंग के संस्करण के अतिरिक्त और कोई संस्करण देखने में नहीं आता। इसी से 'श्रीरामरत्न-पुस्तक-माला' के द्वितीय पुष्प के रूप में यह संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आशा है यह संस्करण साहित्यिक और धार्मिक दोनों प्रकार की दृष्टि रखनेवालों के लिये उपयोगी सिद्ध होगा।

ब्रह्मनाल, काशी
श्रीगणेश-चतुर्थी, १९९१ } विश्वनाथप्रसाद मिश्र

गंगालहरी

(दोहा)

हरि हर बिधि को सुमिरि कै, काटहु कठिन कलेस।
कबि 'पदमाकर' करत है, गंगालहरी बेस ॥१॥

(कवित्त)

बई ती बिरंचि भई बामन-पगन पर,
फैली-फैली फिरी ईस-सीस पै सुगथ की।
आइ कै जहान जन्हु-जंघा लपटाई फेरि,
दीनन के हेत दौरि कीन्ही तीनि पथ की ॥
कहै 'पदमाकर' सु महिमा कहाँ लौं कहौं,
गंगा नाम पायो सोही सबके अरथ की।
चार्‌यो फल-फली फूली गहगही बहबही,
लहलही कीरति-लता है भगीरथ की ॥२॥

कूरम पै कोल कोल हू पै सेष-कुंडली है,
कुंडली पै फबी फैल सुफन हजार की।
कहै 'पद्माकर' त्यों फन पै फबी है भूमि,
भूमि पै फबी है थिति रजत-पहार की॥
रजत-पहार पर संभु सुरनायक हैं,
संभु पर ज्योति जटाजूट है अपार की।
संभु-जटाजूटन पै चंद की छुटी है छटा,
चंद की छटान पै छटा है गंग-धार की॥३॥

करम को मूल तन तन-मूल जीव जग,
जीवन को मूल अति आनँद ही धरिबो।
कहै 'पद्माकर' त्यों आनँद को मूल राज,
राज-मूल केवल प्रजा को भौन भरिबो॥
प्रजा-मूल अन्न सब अन्नन को मूल मेघ,
मेघन को मूल एक जज्ञ अनुसरिबो।
जज्ञन को मूल धन, धन-मूल धर्म, अरु
धर्म-मूल गंगाजल-बिंदु पान करिबो॥४॥

सहज सुभाय आय एक महापातकी की,
गंगा मैया धोई तू तौ देह निज आप है।
कहै 'पद्माकर' सु महिमा मही में भई,
महादेव देवन में बाढ़ी थिर थाप है॥
जकि-से रहे हैं जम, थकि-से रहे हैं दूत,
दूनी सब पापन के उठी तन ताप है।
बाँची बही वा की गति देखि कै बिचित्र रहे,
चित्र-कैसे लिखे चित्रगुप्त चुपचाप है॥५॥

गंगा के चरित्र लखि भाष्यौ जमराज, यह
ए रे चित्रगुप्त मेरे हुक्म में कान दै।
कहै 'पद्माकर' नरक सब मूँदि करि,
मूँदि दरवाजेन को तजि यह थान दै॥
देखु यह देवनदी कीन्हें सब देव, या तें
दूतन बुलाइ कै बिदा के बेगि पान दै।
फारि डारु फरद न राखु रोजनामा कहूँ,
खाता खति जान दै बही को बहि जान दै॥६॥

जान्यो जिन है न जज्ञ जोग जप जागरन,
जन्महि बितायो जग जोयन को जोइ कै।
कहै 'पद्माकर' सुदेवन की सेवन तें,
दूरि रहे पूरि मति-बेदरद होइ कै॥
कुटिल कुराही कूर कलही कलंकी, कलि-
काल की कथान में रहे जे मति खोइ कै।
तेऊ बिस्नु-अंगन में बैठे सुर-संगन में,
गंग की तरंगन में अंगन को धोइ कै॥७॥

जैसे तैं न मो सों कहूँ नेक हू डरात हुतो,
तैसो अब तो सों हौं हूँ नेक हू न डरिहौं।
कहै 'पद्माकर' प्रचंड जौ परैगो तौ,
उमंडि करि तो सों भुजदंड ठोंकि लरिहौं॥
चलो-चलु चलो-चलु विचलु न बीच ही तें,
कीच-बीच नीच तो कुटुंब को कचरिहौं।
ए रे दगादार मेरे पातक अपार तोहि,
गंगा की कछार में पछारि छार करिहौं॥८॥

आयो जौन तेरी धौरी धारा में धसत जात,
तिन को न होत सुरपुर तें निपात है।
कहै 'पदमाकर' तिहारो नाम जा के मुख,
ता के मुख अमृत को पुंज सरसात है॥
तेरो तोय छ्वै कै औ छुवति तन जा को बात,
तिन की चलै न जमलोकन में बात है।
जहाँ-जहाँ मैया तेरी धूरि उड़ि जाति गंगा,
तहाँ-तहाँ पापन की धूरि उड़ि जात है॥९॥

जमपुर द्वारे लगे तिन में केवारे, कोऊ
हैं न रखवारे ऐसे वन के उजारे हैं।
कहै 'पदमाकर' तिहारे प्रन धारे तेऊ,
करि अघ भारे सुरलोक को सिधारे हैं॥
सुजन सुखारे करे पुन्य उजियारे अति,
पतित-कतारे भवसिंधु तें उतारे हैं।
काहू ने न तारे तिन्हैं गंगा तुम तारे, और
जेते तुम तारे तेते नभ में न तारे हैं॥१०॥

सुचित गोविंद ह्वै कै सेवते कहाँ धौं जाइ,
जलजंतु-पंति जरि जैबे को अमिलती।
कहै 'पदमाकर' सु जादा कहौं कौन अब,
जाती मरजादा ह्वै मही की अनमिलती॥
जल थल अंतरिच्छ पावते क्यों पापी मुक्ति,
मुनिजन जापकन जो न दुरि मिलती।
सूखि जातो सिंधु बडवानल की झारन सों,
जो न गंगाधार ह्वै हजार धार मिलती॥११॥

विधि के कमंडल की सिद्धि है प्रसिद्धि यही,
हरि-पद-पंकज-प्रताप की लहर है।
कहै 'पद्माकर' गिरीस-सीस-मंडल के
मुंडन की माल ततकाल अघहर है॥
भूपति भगीरथ के रथ की सुपुन्य-पथ,
जन्हु-जप-जोग-फल-फैल की फहर है।
छेम की छहर गंगा रावरी लहर,
कलिकाल को कहर जमजाल को जहर है॥१२॥
हौं तौ पंचभूत तजिबे को तक्यो तोहिं, पर
तैं तौ कस्यो मोहिं भलो भूतन को पति है।
कहै 'पद्माकर' सु एक तन तारिबे में,
कीन्हें तन ग्यारह कहौ सो कौनि गति है॥
मेरे भाग गंग यहै लिखी भागीरथी, तुम्हैं
कहिए कछुक तौ कितेक मेरी मति है।
एक भवसूल आयौं मेटिबे को तेरे कूल,
तोहि सौ त्रिसूल देत बार न लगति है॥१३॥
भाषा होति भूषित सु पूरी अभिलाषा होति,
सुजस-लतान की सु साखा है सुगति की।
कहै 'पद्माकर' त्यों बदन बिसाल होत,
हाल होत हेरि छल-छिद्रन की खतिकी॥
गंगाजू हितारे गुनगान करें अजगवे,
आनि होति बरषा सु आनँद की अति की।
पूर होत पुन्यन को धूर होत अधरम,
चूर होति चिंता दूर होति दुरमतिकी॥१४॥

सूधरो जो होतो माँगि लेतो और दूजो कहूँ,
जातो बन खेती करि खातो एक हर की।
ए तो 'पद्माकर' न मानत है नाथि चलें,
भुजन के साथ है गेरया अजगर की॥
मैं तो याहि छोड़ौं पै न मो को यह छोड़त है,
फेरि लै री फेरि व्याधि आपने बगर की।
सैल पै चढ़त गहि ऊरध की गैल गंगा,
कैसो बैल दीन्हों जो न गैल गहै घर की॥१५॥
जोग जप जागै छाँड़ि जाहु न परागै भैया,
मेरी कही आँखिन के आगे सु तौ आवैगी।
कहै 'पद्माकर न ऐहै काम सरस्वती,
साँच हू कलिंदी कान करन न पावैगी॥
लैहै छीनि अंबर दिगंबर के जोरावरी,
बैल पै चढ़ाइ फेरि सैल पै चढ़ावैगी।
मुंडन के माल की भुजंगन के जाल की,
सु गंगा गजखाल को खिलत पहिरावैगी॥१६॥
लोचन असम अंग भसम चिता को लाइ,
तीनों लोक नायक सो कैसे कै ठहरतो।
कहै 'पद्माकर' बिलोकि इमि ढंग जाके,
वेद हू पुरान गान कैसे अनुसरतो॥
बाँधे जटाजूट बैठि परबत-कूट माहिं,
महाकालकूट कहौ कैसे कै ठहरतो।
पीवै नित भंग रहै प्रेतन के संगै, ऐसे
पूछतो को नंगै जो न गंगै सीस धरतो॥१७॥

पापन की पाँति भाँति-भाँति बिललाति परी,
जम की जमाति हलकंपन हिलति है।
कहै 'पद्माकर' हमेसा दिव्य-बीथिन में,
बानन की रेल-ठेल ठेलनि ठिलति है॥
सुरधुनि रावरे उधारे जग-जीवन की,
छिन-छिन सेन सिवलोक को मिलति है।
आसन अरघ देत-देत निसिबासर,
बिचारे पाकसासन को साँस न मिलति है॥१८॥

सबन के बीच बीच-समै महानीच-मुख
गंगा मैया तेरे आजु रेनु-कन ह्वै गये।
कहै 'पद्माकर' दसा यों सुनौ ता की वा की,
छबि की छटान सों त्यों छित-छोर छ्वै गये॥
दूत दबकाने चित्रगुप्त चुपकाने, औ
जकाने जमजाल पाप-पुंज लुंज त्वै गये।
चारिमुख चारिभुज चाहि-चाहि रहे ताहि,
पंचन के देखत ही पंचमुख ह्वै गये॥१९॥

कलि के कलंकी कूर कुटिल कुराही केते,
तरि गे तुरंत तबै लीन्ही रेनु-राह जब।
कहै 'पद्माकर' प्रयास बिन पावै सिद्धि,
मानत न कोऊ जमदूतन की दाह दब॥
क़ागज करम करतूति के उठाइ धरे,
पचि-पचि पेच में परे हैं प्रेतनाह अब।
बेपरद बेदरद गजब गुनाहिन के,
गंगा की गरद कीन्हें गरद गुनाह सब॥२०॥

रेनुका की रासन में कीच-कुस-कासन में,
निकट निवासन में आसन लढ़ाऊ के।
कहै 'पद्माकर' तहाँई मंजु सूरन में,
धौरी-धौरी धूरन में पूरन प्रभाऊ के॥
वारन में पारन में देखहु दरारन में,
नाचति है मुकुति अधीन सब काऊ के।
कूल औ कछारन में गंगाजल-धारन में,
मँझरा मँझारन में झारन में झाऊ के॥२१॥
तेरे तीर जौ लौं एक लहर निहारियतु,
तौ लौं कैयो लच्छ सूच्छ लहरन धारती।
कहै 'पद्माकर' चहौं जौ वरदान, तौ लौं
कैयो बरदानन के गान अनुसारती॥
जौ लौं लगौं काहू सों कहन कला एक तौ लौं,
कैयो लच्छ कला के समूहन सँभारती।
जौ लौं एक तारे को हौं रचत कवित्त गंगे,
तौ लौं तुम केतिक करोरि तारि डारती॥२२॥
गंगाजू तिहारे तीर आछी भाँति 'पद्माकर'
देखि एक पातकी की अद्भुत गति है।
आइ कै गोविंद बाँह धरि कै गरुडजू पै,
आपनेई लोक जाइबे की कीन्ही मति है॥
जौ लौं चलिबे को भये गाफिल गोविंद तौ लौं,
चोरि चतुरानन चलाई हंसगति है।
जौ लौं चतुरानन चितैबे चारों ओर, तौ लौं
बृष पै चढाइ लै गयोई बृषपति है॥२३॥

पापी एक जात हुतो गंगा के अन्हाइबे को,
ता सों कहै कोऊ एक अधम अपान में।
जाहु जनि पंथी उत बिपति बिसेषि होति,
मिलैगो महान कालकूट खान-पान में॥
कहै 'पदमाकर' भुजंगनि बँधैंगे अंग,
संग में सुभारी भूत चलैंगे मसान में।
कमर कसैंगे गजखाल ततकाल, बिन
अंबर फिरैगो तू दिगंबर दिसान में॥२४॥
कैधौं तिहूँ लोक की सिँगार की बिसाल माल,
कैधौं जगी जग में जमाति तीरथन की।
कहै 'पदमाकर' बिराजै सुरसिंधु-धार,
कैधौं दूधधार कामधेनुन के थन की॥
भूपति भगीरथ के जस की जलूस कैधौं,
प्रगटी तपस्या कैधौं पूरी जन्हु-जन की।
कैधौं कछु राखै राकापति सों इलाका भारी,
भूमि की सलाका कै पताका पुन्य-गन की॥२५॥
जम को न जोर जब पापिन पै चल्यो तब,
हाथ जोरि गंगाजू सों चुगुली करैं खरे।
बड़ेन पै ढरौ पै ना ढरौ देवि तुच्छन पै,
कहै 'पदमाकर' सुनावत हरे-हरे॥
बड़ेन पै ढरे बड़ी पाइये बड़ाई देखौ,
ईस पै ढरीं तौ तुम्हैं ईस सीस पै धरे।
तुच्छन को देतीं जैसो नारायन रूप, तैसो
तुच्छ तुम्हैं तुच्छ करि पायन तरे करे॥२६॥

अधम अजान एक चढ़ि कै बिमान भाष्यो,
बूझत हौं गंगा तोहि परि-परि पाइ हौं।
कहै 'पद्माकर' कृपा करि बतावै साँची,
देखे अति अद्भुत रावरे सुभाइ हौं॥
तेरे गुनगान ही की महिमा महान मैया,
कान-कान नाइ कै जहान-मध्य छाइहौं।
एक मुख गाये ता के पंचमुख पाये, अब
पंचमुख गाइहौं तौ केते मुख पाइहौं ॥२७॥

पापन की पाँति महामंद मुख मैली भई,
दीपति दुचंद फैली धरम-समाज की।
कहै 'पद्माकर' त्यों रोगन की राह परी,
दाह परी दुःखन में गाह अति गाज की॥
जा दिन तें भूमि माहिं भगीरथ आनी, जग
जानी गंगधारा या अपारा सब काज की।
ता दिन तें जानी-सी बिकानी बिललानी-सी,
बिलानी-सी दिखानी राजधानी जमराज की ॥२८॥

जम के जसूस बिनै जम सों हमेस करैं,
तेरी ठाकुरी को ठीक नेकु न निहारो है।
बड़े-बड़े पापी औ सुरापी द्विज-तापी, तहाँ
चलन न पावै कहूँ हुकुम हमारो है॥
कहै 'पदमाकर' सुब्रह्मलोक बिस्नुलोक,
नाम लै कै कोऊ सिवलोक को सिधारो है।
बैठी सीस गंगा के तरंगा है अभंगा, ऐसी
गंगा ने उठाइ दीन्हों अमल तिहारो है ॥२९॥

बिन जप जज्ञ दान तीछन तपस्या ध्यान,
चाहत हौ जो पै तिहूँ लोक में महाउदोत ।
कहै 'पदमाकर' सुनौ तौ हाल, हामी भरौ,
लिखौ कहौ लै कै कहूँ कागद-कलम-दोत ।
गंगाजू के नाम सुने हामी भरे लिखे कहे,
ऐसे चढ़ि जात कछु पुन्यन के पूरे गोत ।
सौ गुने सुने तें औ हजार गुने हामी भरे,
लाख गुने लिखत करोरि गुने कहे होत ॥३०॥

परो एक पतित पराउ तीर गंगाजू के,
कुटिल कृतघ्नी कोढ़ी कुंठित कुढंगी अंध ।
कहै 'पदमाकर' कहौं मैं कौन वा की दसा,
कीट परि गये तन आवै महा दुरगंध ॥
पाप हाल छूटि गे सु लूटि गे बिपत्ति-जाल,
टूटि गे तड़ाक दे सुनाम लेत भवबंध ।
गं कहे गनेस-बेस दौरि गही बाँह अरु,
गा के कहे गरुड़ चढाइ लीन्हों निज कंध ॥३१॥

सरद-घटा-सी खासी उठती अटा-सी,
दुपटा-सी छिति छीरधि-छटा-सी निरधारिये ।
लज्जा-सी छुटी-सी छारद्वारी-सी गढ़ी-सी गढ़,
मठ-सी मढ़ी-सो औ गढ़ी के ढार ढारिये ॥
कहै 'पदमाकर' सु धौरी-धौरी दौरी आवै,
चौरी-चौरी चंचल सुचारु चिन्हवारिये ।
हरे-हरे छबि नई-नई न्यारी-न्यारी नित,
लहरैं निहारि प्यारी गंगाजू तिहारिये ॥३२॥

विघन विनास भवपास होत नासै भासै,
नासै पुन्य-पुंज को प्रकासै रंगरंगा के।
सुख की समाजै उपराजै साज छाजै छिति,
घन-सी गराजै राजै सीस ईस नंगा के॥
कहै 'पदमाकर' सुजानै करि ज्ञानै जानै,
तानै मनमानै भोग आनै देव-अंगा के।
सुंदर सुभंगा नित अमित अभंगा आछे,
अघ-ओघ-भंगा ये तरंगा देवि गंगा के॥३३॥

तहाँ आइ भूमि तें लगाइ आसमान हू लौं,
जानि गिरवान औ विमानन के जुरे थोक।
कहै 'पदमाकर' जो कोऊ नर जैसे तैसे, तन
देत गंगा - तीर तजि कै महान सोक।
सो तौ देत व्याधै विष दुःखन दिनाई देत,
पापन के पुंज को पहारन को ठोक-ठोक॥
दगा देत दूतन चुनौती चित्रगुप्तै देत,
जम को जरब देत पापी लेत सिवलोक॥३४॥

सुखद सुहाई मनभाई मुनिदेवन के,
निखिल निकाई रूप बेदन में गाई है।
कहै 'पदमाकर' कहाँ लौं साधुताई कहौं,
सब ही पै एक-सी दया-सी बगराई है॥
पुन्यताई धारत उधारत अधमताई,
नीक ठकुराई की ठसक ठहराई है।
जहाँ-जहाँ जम की जमाति कीन्ह करामाति,
तहाँ-तहाँ फिरै देवि गंगा की दुहाई है॥३५॥

गंगाजू के नीर-तीर छोड़े हैं सरीर जिन,
तेऊ गने जात पुन्यवंतन की धुर हैं।
कहै 'पदमाकर' त्यों तिन की जलूसै लखि,
गीरवान सकल सराहैं जुर-जुर हैं।
सारथी गोविंद दीपदानवारे भानु होत,
पंखवारे भारे पाकसासन-से सुर हैं॥
खौरवारे बरुन तमोरवारे तारापति,
चौंरवारे चारु चतुरानन चतुर हैं॥३६॥

एक महापातकी सुगात की दसा बिलोकि,
देत यों उराहनो सु आठ हू पहर है।
मीच-समै तेरे उत आप गये कंठ, इत
ब्यापि गयो कंठ कालकूट-सो जहर है।
आप चढ़ी सीस मोहिं दीन्ही बकसीस,
औ हजार सीसवारे की लगाई अटहर है।
मोहिं करि नंगा अंग-अंगनि भुजंगा बाँधो,
ए री मेरी गंगा तेरी अद्भुत लहर है॥३७॥

कीजतु फिराद सुनि लीजिये हमारी गंगा,
साखन के साथी दुःख दिग्गज डिगाये तू।
कहै 'पदमाकर' जु जानत न कोऊ दूजो,
तौन जस जगा-जगा जगद्रुम गाये तू॥
आयो हुतो हौं तो कछु लीबे को तिहारे पास,
जनम के जोरे मेरे पातक हिराये तू।
छोड़ि-छोड़ि तत्र तन सोये ते गरीब जे वै,
ते वै पूरे-पूरे पुन्य-पटल जगाये तू॥३८॥

मुनि मन माने सनमाने सारदादि वंदि,
नारदादि जाने जे बखाने वेद-बानी के।
आप अविनासी हैं बिनासी दुःखजालन के,
पुन्य के प्रकासी प्रन-पूरक सु प्रानी के।
कहै 'पद्माकर' सु पाप-तम-पूषन हैं,
दूषन-रहित भव-भूषन महानी के।
ध्यावौ अब ध्यावौ लोक पावौ देवदेवन के,
गावौ अरे गावौ गुन गंगा महारानी के ॥३९॥

लाइ भूमिलोक तें जसूस जबरई जाइ,
जाहिर खबर करी पापिन के मित्र की।
कहै 'पद्माकर' बिलोकि जम कही कै,
विचारौ तौ करम-गति ऐसे अपवित्र की।
जौ लौं लगे कागद बिचारन कछुक तौ लौं,
ता के कान परी धुनि गंगा के चरित्र की।
वा के सीस ही तें ऐसी गंगधार बही, जा में
बही-बही फिरी बही चित्र औ गुपित्र की ॥४०॥

सुरसरि मैया एक पातकी पुकारयो तोहि,
ऐसो दिव्य दीन्हों तपतेज वोहि तैं नै है।
कहै 'पद्माकर' स्वलोक तिहि आगे रखि,
करत प्रनाम सुरबृंद सब न-नै है।
व्याकुल बिलोकि वह बोल्यो देवि देवन सों,
कोऊ ना डराहु तुम्हैं और कछु दैनै है।
इंद्र सों कहत मोहिं लनै है न इंद्रलोक,
संभुलोक लैवै कै गोबिंद लोक लैन है ॥४१॥

हेरि-हेरि हँसत न चाहत हरषि चढ्यो,
बैल हु बिलोकि मन वा की ओर टरको।
कहै 'पद्माकर' सु देखि कै गरुड़ हू को,
लेखि निज भाग अनुरागि कै न सरको॥
का पै चढ़ौं कौन तजौं चाहत सबन,
यह सोचत पतित पर्‌यो गंगा-तीर पर को।
जौ लौं घरी द्वैक रूप हर को न पायो, तौ लौं
पातकी बिचारो भयो चोर भरे घर को॥४२॥
वा को जस कितहूँ न जाग्यो परतच्छपई,
या को धाम-धाम फैलि-फैलि रह्यो जस है।
वा को सुन्यो एक देवलोक में दरस होत,
या को तौ दिखात तिहुँ लोक में दरस है॥
कहै 'पद्माकर' सुदान वह माँगे देत,
ये तौ बिन माँगे सबै देत सरवस है।
आछो अभिराम कहै पूरन सकल काम,
गंगाजू को नाम कामतरु तें सरस है॥४३॥
सारमाला सत्य की बिचारमाला बेदन की,
भारी भागमाला है भगीरथ नरेस की।
तपमाला जन्हु की सु जपमाला जोगिन की,
आछी आपमाला या अनादि ब्रह्मबेस की॥
कहै 'पद्माकर' प्रमानमाला पुन्यन की,
गंगाजू की धारा धनमाला है धनेस की।
ज्ञानमाला गुरु की गुमानमाला ज्ञानिन की,
ध्यानमाला ध्रुव मौलिमाला है महेस की॥४४॥

ज्ञानन में ध्यानन में निगम-निदानन में,
मिलत न क्यौं हूँ हरि ही में ध्याइयतु है।
कहै 'पदमाकर' न तच्छन प्रतच्छ होत,
अच्छन के आगे हू अधिच्छ गाइयतु है॥
इंदिरा के मंदिर में सुनिये अनंद-भरे,
बीधे भव-फंद तहाँ कैसे जाइयतु है।
बेदन के बृंद में न पैयै छीरसिंधु में,
सु गंगाजल-बिंद में गुबिंद पाइयतु है॥४५॥
नीर के निकट रेतु-रंजित लसै यों तट,
एकपट चादर की चाँदनी बिछाई-सी।
कहै 'पदमाकर' त्यों करत कलोल लोक,
आवरत पूरे रासमंडल की पाई-सी।
बिसद बिहंगन की बानी राग राचती-सी,
नाचती तरंग ऐन आनँद बधाई-सी।
अघ की अँधेरी कहूँ रहन न पाई, फिरै
धाई-धाई गंगाधार सरद-जुन्हाई-सी॥४६॥
काम अरु क्रोध लोभ मोह मद मातसर्य,
इन की जँजीरन को जारिहै पै जारिहै।
कहै 'पदमाकर' पसारि पुन्य चारौ ओर,
चारौ फल धामन में धारिहै पै धारिहै॥
छोभ छल छंदन को बाढ़े पाप-बृंदन को,
फिकिरि के फंदन को फारिहै पै फारिहै।
एकै बार बारि जिन गंगा को पियो है,
तिन्हैं तारनि तरंगिनी या तारिहै पै तारिहै॥४७॥

मुँडन की माल देखौ भाल पर ज्वाल कीवो,
छीन लीबो अंबर अडंबर जहाँ जैसो।
कहै 'पद्माकर' त्यों बैल पै चढ़ाइबो,
उढ़ाइबो पुरानी गजखाल को भलो तैसो ॥
नंगा करि डारिवो सुभंगा भखि डारिबो,
सु गंगा दुख मानिवो न बूझै तें कछू वैसो।
साँपनि सिँगारिवो गरे में बिष पारिबो,
जु तारिबो ऐसो तौ बिगारिबो कहौ कैसो ॥४८॥
सूधे भये जे हैं नर गंगा के अन्हाइबे को,
कामी बदनामी भामी कैयक करोर हैं।
कहै 'पद्माकर' त्यों तिन की अवाइन के,
माचि रहे जोर सुर-लोकन में सोर हैं ॥
बार-बार हाट-सी लगाये लखैं घाट-घाट,
बाट हेरैं तीर में कवै धौं तन बोरहैं।
एक ओर गरुड़ सुहंस एक ओर ठाढ़े,
एक ओर नाँदिया बिमान एक ओर हैं ॥४९॥
आस करि आयो हुतो मैया पास रावरे मैं,
गाढ हू के पास दुख दूरि बुटि-बुटि गे।
कहै 'पद्माकर' कुरोग में सँघाती तेऊ,
गैल में चलत घूमि-घूमि घुटि-घुटि गे ॥
दगादार दोष दीह दारिद बिलाइ गये,
फिकिरि के फंद बिन छोरे छुटि-छुटि गे।
जौ लौं आउ-आउ तेरे तीर पर गंगा तौ लौं,
बीच ही में मेरे पाप-पुंज लुटि-लुटि गे ॥५०॥

भूमिलोक भुवर्लोक स्वर्गलोक महालोक,
जनलोक तपलोक सत्यलोक कल सैं।
कहै 'पद्माकर' अतल में वितल में,
सुतल मैं रसातल मैं मंजु महातल मैं ॥
त्यों मैं तलातल मैं पताल मैं अचल चल,
जेते जीव-जंतु बसैं भाषत सकल मैं।
बीच मैं न बिलमैं विराजै बिस्नु-थल मैं,
सु गंगाजू के जल मैं अन्हाये एक पल मैं ॥५१॥

जनम-जनम जिन छोड्यो तौ न मेरो संग,
अंग-अंग नित ही रहे जे लपटाने हैं।
कहै 'पद्माकर' तिहारी सौंह गंगा जोग-
जप के जतन में न नेकु अकुलाने हैं ॥
तौन पाप मेरे तेरे तीर पर मैया अब,
मिलत न हेरे इत कित धौं हिराने हैं।
कचरे करार में वहे कै बीच धार में, कै
बूड़े वै सेवार में कि बारू में बिलाने हैं ॥५२॥

योग हू में भोग में बियोग में सँयोग हू में,
रोग हू में रस में न नेको बिसराइये।
कहै 'पदमाकर' पुरी में पुन्य, रौरव में,
फैलन में फैल-फैल गैलन में गाइये।
वैरिन में बंधु में विथा में बंसवालन में,
विषय में रन हू में जहाँ-जहाँ जाइये।
सोच हू में सुख में सुरी में साहिबी में कहूँ,
गंगा गंगा गंगा कहि जनम बिताइये ॥५३॥

(दोहा)

गिरिस गजानन गिरिसुता ध्याइ, समुझि श्रुति-पंथ ।
कबि 'पद्माकर' ही कियो, गंगालहरी ग्रंथ ॥५४॥

(कवित्त)

भारी-सो भुजंग भागीरथि के सुतीर पर्‍यो,
ताहि लखि खाइबे को तरछत पार भो ।
कहै 'पद्माकर' चतुर्भुज को रूप भयो,
बड़े-बड़े पापनि हूँ ताप को तिसार भो ।
नारद बिसारद हू सारद सराहैं भले,
इंद्र जम बरुन कुबेर परिवार भो ।
गंगा के प्रभाव लखि मुकुति मजाकी मंजु,
सोई अहि गरुड़ के कंध पै सवार भो ॥५५॥

(दोहा)

गंगालहरी जो सुजन, कहैं - सुनै श्रुति - सार ।
ताको गंगा देति है, सदा सुभग फल चार ॥५६॥

इति पद्माकरकृता गंगालहरी समाप्ता ।

श्रीरामरत्न-पुस्तक-माला का तृतीय पुष्प
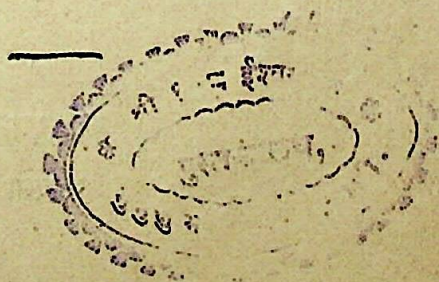
जगद्विनोद

'पद्माकर' का 'जगद्विनोद' साहित्यिकों में बहुत प्रसिद्ध है। श्रृंगार-रस के आलंबन एवं उद्दीपन विभावों का विस्तार से तथा मोटे रूप से रस-मात्र का विवेचन इसमें बहुत साफ पाया जाता है। इन विषयों का अध्ययन करनेवाले विद्यार्थी सर्व प्रथम इसी पुस्तक का अध्ययन किया करते हैं। किंतु बहुत दिनों से इस पुस्तक का कोई संस्करण प्राप्य नहीं है। इसी अभाव की पूर्ति के लिये यह संस्करण प्रकाशित किया गया है। कई प्रतियों के आधार पर इसका पाठ-संशोधन बड़े परिश्रम के साथ किया गया है। विद्यार्थियों की सुविधा के लिये इसमें कठिन शब्दों एवं स्थलों की टिप्पणियाँ भी विस्तार से दी गई हैं। मूल्य १)